JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

अवनद्ध वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शुभम वर्मा
असि0 प्रोफेसर, संगीत विभाग
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय
कानपुर

सारांश

महर्षि स्वाती मुनि जो उच्चकोटि के वैदिक ज्ञान और संगीत के विद्वान थे उन्हें अवनद्ध वाद्य का पितामाह कहा जाता है। महर्षि स्वाती मुनि ने पुष्कर वाद्य का आविष्कार किया जिसके तीन भाग थे।

1. आंकिक
2. उद्धर्वक
3. आलिंग्य

जिसे त्रिपुष्कर भी कहा जाता है।

प्राचीन एवं भरतकालीन अवनद्ध वाद्य

1. पुष्कर 2. दुर्दुर 3. पणव 4. दुक्कड़ 5. नक्कारा

पं0 शारंगदेव कालीन अवनद्ध वाद्य

1. झल्लरी 2. हुडुक अथवा आवज 3. पटह
4. भेरी 5. तम्बकी

मध्यकालीन अवनद्ध वाद

1. खंजरी 2. घडस 3. मृदंग

प्रचलित अवनद्ध वाद्य

1. तबला 2. पखावज 3. ढोलक
4. घटम् 5. खोल 6. ढोल

मुख्य शब्द

आंकिक, उद्धर्वक, आलिंग्य, पुष्कर, मृदंग, पखावज आदि।

हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा में प्रयोग होने वाले वे वाद्य जो भीतर से खोखले और चर्माच्छादित होते है, जिनका आवरण मिट्टी, लकड़ी या अन्य धातु पदार्थ का होता है जो एकमुखी, द्विमुखी और उद्धर्वक स्वरूप में होते है जिन्हें हथेली/उंगलियों अथवा लकड़ी/धातु पदार्थ से निर्मित स्टिक, छड़ी आदि से आघातित कर ध्वनि वर्णों की ऊर्जा को संचालित/निकासित किया जाता है वे सभी अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में आते है।

नाट्य शास्त्र में महर्षि भरत ने आनद्ध वाद्यों के अंतर्गत मुख्य रूप से पुष्कर वाद्यों का वर्णन किया है। भरतकाल में भारतीय संगीत में प्रयुक्त अवनद्ध वाद्यों की संख्या 100 बताई है।

महर्षि स्वाती मुनि जो उच्चकोटि के वैदिक ज्ञान और संगीत के विद्वान थे उन्हें अवनद्ध वाद्य का पितामाह कहा जाता है। महर्षि स्वाती मुनि ने पुष्कर वाद्य का आविष्कार किया जिसके तीन भाग थे।

4. आंकिक
5. उद्धर्वक
6. आलिंग्य

जिसे त्रिपुष्कर भी कहा जाता है।

पुष्कर वाद्य को आधार मानकर ही समय–समय पर विद्वानों ने संगीतविदों की आवश्यकतानुसार नवीन अवनद्ध वाद्यों का आविष्कार किया। लय ताल के व्यवहार हेतु प्राचीन पुष्कर वाद्य का विकास हुआ और इसी वाद्य को आधार मानकर नवीन अवनद्ध वाद्यों का सृजन किया।

प्राचीन एवं भरतकालीन अवनद्ध वाद्य

पुष्कर

यह एक अति प्राचीन अवनद्ध लय वाद्य है। आचार्य भरत द्वारा विरचित 'नाट्य शास्त्र' के 33 वें अध्याय में तथा नान्यदेव कृत भरतभाष्यम के तालाध्याय के अन्तर्गत पुष्कराध्याय के अनुसार स्वाति ऋषि द्वारा पुष्कर एवं मृदंग वाद्यों के निर्माण की पुष्टि होती है। उसमें उल्लेखित है कि वर्षा ऋतु में एक बार स्वाति मुनि जलाशय में स्नान कर रहे थे, कमल के पत्तों पर वर्षा जल की बूदों द्वारा उत्पन्न सुरमय ध्वनि से उनका ध्यानाकर्षित हुआ और जिसके फलस्वरूप उन्होंने पुष्कर वाद्य की परिकल्पना की।

''समय के साथ–साथ तीन मुख वाले पुष्कर (जिसे त्रिपुष्कर भी कहते हैं) कि लोक–प्रियता घटती गयी और उसका स्थान लिया मृदंग ने। सम्भवतः त्रिपुष्कर में उर्ध्वमुख का प्रयोग सामान्य वादकों के लिये कठिन था। अतः उसका प्रचार कम होता गया और धीरे–धीरे मृदंग की लोक–प्रियता बढ़ती गयी।''[1]

दुर्दुर–आचार्य भरत ने अवनद्ध वाद्य दुर्दुर को अंगवाद की श्रेणी में रखकर इसे महत्ता प्रदान करी है। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि इस महत्वपूर्ण अवनद्ध वाद्य की महत्ता पूर्व के आचार्यों ने स्वीकार नहीं

की थी। महर्षि भरत के अनुसार यह घट के आकार का होता था। दुर्दुर का मुख नौ अंगुल का होता था जिसके ऊपर चमड़े की पूड़ी का विस्तार 12 (बारह) अंगुल का होता था। यह चमड़े की पूड़ी सुतलियों से पणव के समान कसी रहती थी। अवनद्ध दुर्दुर में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के सम्बन्ध में आचार्य भरत कहते है–

''रेक्लृतिकुत्खनोत्वनोधन्मोगोणेहधिण्णसंयुक्ताः।

इति दर्दर प्रहाराः कार्या मुक्ता निषण्णाश्च।।''[2]

दुन्दुभि–वैदिक साहित्य में अवनद्ध वाद्य दुन्दुभि का प्रचुर उल्लेख मिलता है। कहीं–कहीं भू–दुन्दुभि की भी चर्चा मिलती है। भूमि में एक गड्ढा खोदकर तथा उसको चमड़े से मढ़कर भूमि दुन्दुभि बनाया जाता था। इसे महाव्रत के समय बजाने की प्रथा थी।

जैसे तबला जोड़ी दो नग का समूह है उसी प्रकार अवनद्ध वाद्य दुन्दुभि में भी दो नग होते है। एक बड़ा होता है जिसकी ध्वनि या नाद गम्भीर होती है तथा दूसरा छोटा होता है जिसकी ध्वनि और तारता ऊँची होती है। दुन्दुभि का छोटा भाग मिट्टी का बना होता है जिसे झील कहते है, यह चमड़े से मढ़ा होता है तथा चमड़े की डोरी से कसा जाता है। जबकि दूसरा नग जो बड़े आकार का होता है, का मुख दो से तीन फीट का होता है और उसे दो गोल लकड़ियों की झड़ी से बजाया जाता है। उत्तर प्रदेश में नौटंकी के साथ प्रसिद्ध वाद्य नगाड़े को बजाया जाता है जो कि दुन्दुभि के समान है। यह अवनद्ध वाद्य मंदिरों तथा मांगलिक अवसरों पर बजाया जाता था। यदि इसे शहनाई के साथ बजाया जाये तो इसे 'नौबत' कहते है।

पणव–पणव भारत का अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य है। कुछ विद्वानों के अनुसार पणव तथा पटह वैदिक कालीन वाद्य माने जा सकते है। आचार्य भरत ने मृदंग के बाद अवनद्ध वाद्यों में पणव को ही सर्वाधिक महत्ता प्रदान की है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में पणव का उल्लेख दिखाई पड़ता है।

दुक्कड़–दुक्कड़ एक लोक अवनद्ध लय वाद्य है। यह आनद्ध वाद्य शहनाई के साथ संगीत में प्रयोग किया जाता है। यह छोटी–छोटी दो नगड़ियों की जोड़ी वाला वाद्य है। इसके दोनों भाग लगभग एक सी ऊँचाई, चौड़ा मुख और नीचे का भाग नुकीला होता है। दुक्कड़ वाद्य का मुख्य आधार अंग मिट्टी का बना होता है। इसके दाहिने भाग में पतली खाल की जालदार डोरियों से कसा जाता है। खाल की मोटाई में भिन्नता के कारण एक स्वर ऊँचा तथा एक का स्वर नीचा होता है। दुक्कड़ वाद्य में स्याही नहीं होती है। इस अवनद्ध वाद्य की वादन विधि तथा शैली तबला के समान है। इसे खड़े होकर भी बजाया जाता है और ऐसी स्थिति में वाद्य के दोनों भागों को कमर में बांध लिया जाता है। दुक्कड़ वाद्य को किसी विशेष स्वर में नहीं मिलाया जाता है।

नक्कारा–''नक्कारा, नगाड़ा व नगारा सभी फारसी भाषा के समानार्थक शब्द है। अतः ऐसी सम्भावना है कि यह वाद्य–यत्र फारस अथवा मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित देशों में प्रचलित रहा हो। प्राचीन और पौराणिक ग्रन्थों में दुन्दभि नामक एक वाद्य का वर्णन मिलता है। 'दुन्दभि' संस्कृत भाषा का शब्द है,

जिसका अर्थ है–बड़ा ढोल या नगाड़ा। प्राचीन दुन्दभि ही आज का नक्कारा है। भेरी नामक वाद्य भी इसी परिवार का एक वाद्य है।''[3]

मुगलकाल में अकबर बादशाह से लेकर वाजिद अली शाह तक के दरबार में नक्कारखाना होने का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि अकबर स्वयं इस अवनद्ध वाद्य को बजाया करते थे तथा 'आइने अकबरी' के अनुसार उनके नक्कारखाने में लगभग बीस जोड़ी नक्कारा थे। नौबतखाने में नफीरी, तुरही एवं शहनाई के साथ नक्कारा बजाए जाने की परम्परा रही है वर्तमान समय में भी इसका प्रयोग उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान व हरियाणा प्रदेश के लोकगीतों के साथ देखने को मिल सकता है। कुछ प्रसिद्ध नक्कारा वादकों के नाम है–त्रिमोहन (कानपुर) एवं सर्व श्री उस्ताद मोहम्मद खाँ, जुम्मन खाँ, शिदन खाँ अब्दुल जमाल खाँ, छिदन उस्ताद (जरारी), छिदालाल, दिलावर खाँ (अलीगढ़), रशीद खाँ वारसी तथा अशफाक।

पं0 शारंगदेव कालीन अवनद्ध वाद्य

झल्लरी–'संगीत रत्नाकर' के अनुसार आधुनिक युग का चंग या खंजरी, 'झल्लरी' का ही प्रतिरूप है। इसकी बनावट व आकार से जाना जा सकता है। इस अवनद्ध वाद्य खंजरी की बनावट की चर्चा अनेक प्राचीन संगीत ग्रन्थों में भी उपलब्ध है।

संगीत रत्नाकर के समय में झल्लरी के साथ उसका एक लघु रूप भी प्रचलित था जिसे 'भाण' कहते थे। झल्लरी वाद्य को पं0 अहोबल ने चक्रवात अथवा कर चक्र के नाम से सम्बोधित किया है और वर्तमान समय में इसी वाद्य को खंजरी, चंग, दायरा आदि के नाम से पुकारा जाता है। 'संगीतसार' के अनुसार झल्लरी चमड़े से मढ़ा हुआ अवनद्ध वाद्य है। इसे बाएं हाथ के अंगूठे से लटकाकर दाएं हाथ के शंकु द्वारा बजाया जाता है। शारंगदेव काल के कुछ समय पश्चात ही रचे जाने वाले ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' में इसे 'घनवाद्य' कहा गया है। 'सुधाकलश' ने झल्लरी के लिये कहा है'

'झल्लरी स्थालरूपिणी।'[4]

हुडुक अथवा आवज–'संगीत–रत्नाकर' के अनुसार हुडुक्का की लम्बाई एक हाथ तथा इसी गोलाई अट्ठारह अंगुल होती है। इसके मुख का व्यास सात अंगुल तथा खाल की मोटाई एक अंगुल होती है। इसमें एक ही रस्सी होती है तथा मुख का मण्डल दस अंगुल होता है। इसके दोनों उठे हुए मुखों की मोटाई सवा अंगुल होती है। इसमें छह छिद्र होते है जिनसे होकर रस्सी बांधी जाती है। उसे भली–भांति रखने के लिये आगे के भाग में तीन तथा पिछले भाग में दो अर्गलाएँ होती हैं। पण्डित अहोबल के अनुसार यह दोमुख वाद्य सोलह अंगुल लम्बा तथा बीच में पतला होता है। इसके मुखों का व्यास आठ

अंगुल होता है जो चमड़े की रस्सियों से कसा होता है, जिसमें छिद्र होते है तथा दो कड़े लगे रहते है। रस्सी के अंत में एक अतिरिक्त रस्सी लगी रहती है जिसे पकड़कर यह वाद्य बजाया जाता है।

पटह–'संगीत–पारिजात' के अनुसार पटह का अर्थ ढोलक है। हिन्दी शब्द सागर में पटह का अर्थ दुन्दुभि और नगाड़ा दिया है। परन्तु वास्तव में पटह न तो दुन्दुभि है और न ही नगाड़ा। संगीत–सार के अनुसार भी ढोलक को प्राचीन युग में पटह कहा गया है। आचार्य भरत ने पटह को प्रत्यंग वाद में पटह हिन्दुस्तान प्राचीनतम अवनद्ध वाद्यों में से एक है। पटह का जो वर्णन संगीत ग्रन्थों में उपलब्ध है उससे यह प्रतीत होता है कि मृदंग के बाद सर्वाधिक प्रचार 'पटह' का ही रहा है। कुछ ग्रन्थकारों ने तो मृदंग से भी ज्यादा पटह का वर्णन किया है। इसकी वजह सिर्फ एक ही हो सकती है कि पटह शास्त्रीय तथा लोक संगीत दोनों ही के लिये उपयुक्त माना गया है जबकि मृदंग का प्रयोग सिर्फ शास्त्रीय संगीत के लिये ही कहा गया है।

पटह दो प्रकार का होता है–

1. देशी
2. मार्गी

भेरी–यह अवनद्ध वाद्य धातु में निर्मित, दो हाथ लम्बा तथा दो मुख वाला होता है। इसके मुख का व्यास एक हाथ लम्बा होता है जो चमड़े से मढ़ा होता है। इसका मुख डोरियों से कसा जाता है जिस पर कांसे के कड़े पड़े रहते है। इसका दायां मुख या नग लकड़ी के द्वारा तथा बायां नग हाथों के द्वारा बजाया जाता है। यह मृदंग जाति का अवनद्ध वाद्य हो सकता है। 'संगीत रत्नाकर' संगीतसार दोनों ही ग्रन्थों में भेरी वाद्य के विषय में जानकारी उपलब्ध है।

भारतीय संगीत वाद्य के अनुसार उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में विवाहोत्सव के समय एक लम्बी सी तुरही (लगभग पाँच हाथ की) मुँह से फूंक कर बजाई जाती है, जिसे मेरी कहते है। इसे बजाने वाले को –भोरिणा' कहते है। इससे यह भली–भाँति सिद्ध होता है कि पुराने समय में ही 'भेरी', 'सुषिर' तथा आनद्ध दोनों प्रकार के वाद्य थे।

तम्बकी–'तम्बकी निसान का ही एक रूप है। तम्बकी निसान से प्रमाण एवं ध्वनि में कुछ मध्यम है परन्तु इसके अन्य सभी लक्षण निसान के समरूप है। तम्बकी के विषय में जानकारी कुछ ही ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। लगभग सभी जगहों पर तम्बकी को निसान का ही छोटा रूप माना गया है।

मध्यकालीन अवनद्ध वाद्य

खंजरी–खंजरी एक अत्यन्त प्राचीन वाद्य है जो देश के लगभग सभी भागों में प्रचलित है। खंजरी को दक्षिण भारत में 'खंजीरा' अथवा 'कंजीरा' कहा जाता है। यह वाद्य यंत्र प्रायः लोक संगीत एवं भक्ति संगीत के साथ बजाया जाता है परन्तु कभी–कभी स्वतन्त्र रूप से भी बजाया जाता है। दक्षिण भारत में खंजरी, शास्त्रीय संगीत के साथ मृदंगम् के स्थान पर प्रयोग किया जाता रहा है। वास्तव में एक कुशल

खंजीरा वादक मात्र एक हाथ से ही मृदंगम् के सभी प्रतिमानों और विभेदों को दिखलाने में सक्षम होता है। महाराष्ट्र में खंजरी को दिमड़ी कहते है।

चंग–यह उत्तर प्रदेश में लोकगीत के साथ बजाया जाने वाला प्रचलित आनद्ध वाद्य है। इसका घेरा लकड़ी से बनाया जाता है जो चार अंगुल का होता है तथा इसका व्यास उन्नीस से बाइस अंगुल तक का होता है। लकड़ी का बना होने के कारण इसमें लगी हुयी खाल विशेष रूप से वर्षा ऋतु में ढीली हो जाती है। अतः वर्तमान समय में इसका घेरा लकड़ी के स्थान पर पीतल का बनाया जाने लगा है साथ ही घेरे का कसने के लिये पाश्चात्य साइड ड्रम की तरह इसमें भी चाभियाँ लगायी जाने लगी है।

''चंग को डफली भी कहते हैं। लोक गायक चंग बजाकर गाते भी है। इसके वादन की विधियाँ भिन्न–भिन्न है। कुछ लोग इसे बांये से पकड़ कर दाहिने हाथ से बजाते हैं, तो कुछ इसे कंधे से लटका कर। कुछ वादक दाहिने हाथ की तर्जनी में किसी धातु का छल्ला पहन कर घेरे पर लय प्रदर्शित करने के लिये प्रहार करते हैं। राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं बिहार में होली के अवसर पर नृत्य टोलियों के साथ चंग वादन खिल उठता है।''[5]

घडस–घडस को आम बोलचाल की भाषा में डिमडिमा कहते है। डिमडिमा में दो तबले होते है इनके पेंदे में एक–एक छिद्र होता है। बाएं हाथ के तबले को मोटे चमड़े की झिल्ली से जबकि दाएं हाथ वाले को एकदम महीन चमड़े की झिल्ली से मढ़ा जाता है। बाएं हाथ के तबले की झिल्ली दाएं हाथ की झिल्ली की तुलना में कुछ ढीली कसी जाती है। इस वाद्य के चमड़े के किनारे से डोरे बांधकर नीचे पेदी के छेद से निकालकर तथा बाएं हाथ के अंगूठे से बांधकर उसी डोरी को खीचने से 'गोकार' की ध्वनि निकाली जाती है, जिसे प्रचलित भाषा में 'गुटक' कहते है।

मृदंग, मुरज तथा मर्दल

इस वाद्य की गणना देश के प्राचीनतम आनद्ध वाद्यों में की जाती है। उत्तर भारत में इस आनद्ध वाद्य को मृदंग कहा जाता है जबकि इसी वाद्य की संरचना में कुछ अन्तर के साथ यही वाद्य दक्षिण भारत में मृदंग के नाम से जाना जाता है। उत्तर भारत में वर्तमान में मृदंग और पखावज में कोई अन्तर नहीं माना जाता है।

सुधाकलश जी ने भगवान शिव को मृदंग या मुरज का आविष्कारक बताया है। 'म ृदंग वाद्य' की प्राचीनता पुराणों में वर्णित है। इसकी उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि सतयुग में त्रिपुरासुर नामक एक अत्यन्त बलशाही दैत्य था, का महादेव शंकर जी से भीषण युद्ध हुआ। जिसमें यह राक्षस मारा गया। इसके बाद महादेव ने प्रसन्न होकर देवताओं के सामने नृत्य किया। आगे लिखा हुआ है कि दैत्यों के रक्त से उत्पन्न कीचड़ से ब्रम्हा ने सबसे पहले मृदंग का निर्माण किया और उसी राक्षस के चमड़े से वाद्य को अच्छादित किया और इसमें उसकी हड्डियों का गुल्म लगाया ब्रम्हा जी के आदेशानुसार उनके पुत्र गणेश जी ने सर्वप्रथम उस पर ताल बजाया।

आचार्य भरत ने मृदंग का जिस प्रकार वर्णन किया है, थोड़ा भ्रामिक प्रतीत होता है क्योंकि एक तरफ तो उन्होंने मृदंग के तीन रूप बताए है–

1. हरीतकी
2. यवाकृति
3. गोपुच्छा

जिससे ये तीनों मृदंग के ही रूप भेद प्रतीत होते है। किन्तु उसके बाद ही उन्होंने कहा है कि आंकिक का हरीतकी के समान, उर्ध्वक का यवा के समान तथा आलिंग्य का गोपुच्छा के समान रूप होता है।

मिट्टी से बने मृदंग शीघ्र नष्ट हो जाते थे अतः वर्तमान समय में काष्ठ के मृदंग बनाये जाते है। काष्ठ निर्मित मृदंग की नाद या ध्वनि भी कर्णप्रिय हो गयी। सम्भवतः मुख्य अंग लकड़ी का होने पर ही गट्टों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ होगा।

'मृदंग' के लिये खैर, शीशम, रक्तचंदन पनस और विजयसार की लकड़ी सर्वोत्तम मानी जाती है।

प्रचलित अवनद्ध वाद्य

1. तबला
2. पखावज
3. ढोलक
4. घटम्
5. खोल
6. ढोल

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, तालकोश, पृष्ठ 204
2. पं0 लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृष्ठ 164
3. आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, तालकोश, पृष्ठ 177
4. पं0 लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृष्ठ 152
5. आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, तालकोश, पृष्ठ 87